

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-06-17

बंगाल और कारोबार का बिगड़ा रिश्ता

विभाजन ने बंगाल के कारोबार पर बुरा असर डाला। वह आज तक उस असर से पूरी तरह उबर नहीं पाया है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं अशोक लाहिड़ी



पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी गत वर्ष कोलकाता में आयोजित बंगाल ग्लोबल बिजनेस समिट जैसे आयोजनों की मदद से राज्य में कारोबार को प्रोत्साहित करने की कोशिश कर रही हैं। इस सिलसिले में प्रदेश में उद्यमिता को बढ़ावा देना काफी अहम होगा। फिलहाल देश के अन्य हिस्सों की तुलना में यहां उद्यमिता की स्थिति ठीक नहीं है। बीसवीं सदी के आरंभ तक प्रदेश में कारोबारियों की तादाद खूब थी लेकिन आज वह सब सपनों की बातें लगती हैं। उदाहरण के लिए 18वीं सदी में शोभाराम बसाक ईस्ट इंडिया कंपनी को कपड़े की आपूर्ति करके करोड़पति बन गए थे। सन 1810 में एक रुपये में 12 किलोग्राम से अधिक चावल मिलता था। जबकि आज एक रुपये में 50 ग्राम चावल भी नहीं

मिलेगा। जाहिर है करोड़ों रुपये की बहुत अधिक कीमत हुआ करती थी। नुकु या लक्ष्मीकांत धर के पास इतना पैसा था कि वह ईस्ट इंडिया कंपनी को उधार दिया करते। वैष्णवचरण सेठ ने दूरदराज इलाकों में गंगा जल बेचकर पैसे कमाए। दक्षिणेश्वर मंदिर की स्थापना करने वाली रानी रासमणि, भगवान रामकृष्ण से संबद्ध थीं। उन्हें भी अपने ससुर प्रीतिराम दास से खूब धन संपदा मिली। प्रीतिराम महिष्य जाति के बांस बेचने वाले थे। सन 1780 के दशक में बांस की कीमतों में तेजी आने के बाद उन्होंने खूब पैसे कमाए। सन 1832 में प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर, टैगोर एंड कंपनी ने बर्दवान के निकट घाटे में चल रही एक कोयला खदान को एक्लेक्जेंडर एंड कंपनी से खरीदा। इस कोयला खदान से पैसे कमाकर द्वारकानाथ ने मध्य कोलकाता में ऐतिहासिक जोरासांको ठाकुरबाड़ी बनाई। अब यहां पर रवींद्र भारतीय विश्वविद्यालय है। हजारों लोग इस जगह को देखने आते हैं क्योंकि यहां उनके सुप्रसिद्ध पोते रवींद्रनाथ पले बड़े।

सन 1890 में राजेंद्र नाथ मुखर्जी नामक एक युवा इंजीनियर और सर थॉमस एक्विन मार्टिन ने मिलकर मार्टिन एंड कंपनी की स्थापना की। आगे चलकर उन्होंने इंडियन आयरन एंड स्टील कंपनी (इस्को) की स्थापना बर्नपुर में की। इसके अलावा उन्होंने विक्टोरिया मेमोरियल भी बनाया। सन 1892 में 31 वर्ष की उम्र में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय ने बंगाल केमिकल्स की स्थापना की। यह देश की पहली दवा कंपनी थी। आगे चलकर बंगाल की उद्यमिता को क्या हुआ? देश के विभाजन ने एक स्वाभाविक आर्थिक क्षेत्र को ध्वस्त कर दिया और शरणार्थियों को जन्म दिया। इसका असर बंगाल की अर्थव्यवस्था और उद्यमिता पर पड़ा। राजनीतिक विरोध, औद्योगिक अशांति, हिंसात्मक बंद और वामपंथियों के घेराव आदि ने पूरी तरह कारोबार और कारोबारी विरोधी माहौल बना दिया। राजेंद्रनाथ मुखर्जी के बेटे सर वीरेन कहते हैं कि सन 1960 के दशक के अंत में इस्को संयंत्र में लगातार श्रमिक अशांति रहने लगी। वह कहते हैं, 'मैंने अपनी आंखों से एक विशाल औद्योगिक परिसर देखा था। मैं उसके साथ 40 वर्ष तक जुड़ा रहा। लेकिन मेरे सामने ही वह धूल-धूसरित हो गया।'

बुनियादी ढांचा विकसित करने के बजाय पुनर्वितरण पर जोर देने से राज्य में सड़कों की हालत खराब हो गई, बंदरगाह ध्वस्त हो गए और शहरों का नियोजन पूरी तरह समाप्त हो गया। बिना औद्योगिक समर्थन के कृषि क्षेत्र का बेहतर प्रदर्शन भी किसी काम का नहीं रह गया। बंगाल का विभाजन सात दशक से भी पुरानी बात है। यह कोरिया के विभाजन से भी पहले की बात है। लेकिन दक्षिण कोरिया उस झटके से उबरकर विकसित देशों की कतार में है। इतना ही नहीं कुछ दक्षिण कोरिया कारोबारी समूह मसलन डील्लिम और सैमसंग सात दशक बाद भी लगातार फलफूल रहे हैं। परंतु बंगाल के प्रमुख कारोबारी घराने कारोबारी जगत से एकदम गायब हो गए। बेहतर बुनियादी ढांचा जैसी मांगें खामोश कर दी गईं। इन बातों से एक सवाल यह उठता है कि क्या बंगाल के मूल्य तार्किक पूंजीवादी व्यवस्था में कारोबारी विकास की भावना के अनुरूप हैं? अपनी मशहूर पुस्तक 'द प्रोटेस्टेंट एथिक्स ऐंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में समाजशास्त्री मैक्सवेबर दलील देते हैं कि हर कोई यहां तक कि वेटर, चिकित्सक, कोचवान, कलाकार, वेश्याएं, बेईमान अधिकारी, सैनिक, गण्यमान्य लोग, जुआरी और भिखारी तक पैसा कमाने की प्रवृत्ति रखते हैं। उन्होंने पूंजीवाद की व्याख्या करते हुए कहा कि यह ताकत के जरिये या अवैध तरीकों से धनोपार्जन नहीं है बल्कि मुनाफे के लिए अवसरों का इस्तेमाल है वह भी शांतिपूर्ण और कानूनी तरीके से।

वेबर ने कहा कि पूंजीवादी दो तरह के हैं एक पारंपरिक और दूसरे तार्किक। पारंपरिक पूंजीवादी केवल बढ़िया जीवनशैली और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए धन कमाना चाहते हैं। उनके लिए एक बार यह सब हासिल करने के बाद बाकी चीजों का मतलब नहीं रहता। बंगाल के कारोबारी घरानों का उभार और पतन पारंपरिक पूंजीवाद के खांचे में सटीक बैठता है। उदाहरण के लिए द्वारकानाथ के परिवार में एक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित समेत कई प्रतिष्ठित व्यक्ति पैदा हुए। लेकिन उनके परिवार में कोई कारोबारी व्यक्तित्व सामने नहीं आया जो मशाल थाम सके। द्वारकानाथ की जीवनी लिखने वाले एक व्यक्ति ने यह भी ध्यान दिया कि रवींद्रनाथ ने कभी अपने लेखन में अपने दादा का जिक्र नहीं किया। इसी तरह चोरबागान के मालिक कोलकाता में संगमरमर का महल बनाकर प्रसिद्ध हुए। उन्हें उनके सामाजिक कार्य के कारण भी प्रतिष्ठा मिली। लेकिन उन्होंने अपने पूर्वजों गंगा विष्णु और रामकृष्ण मलिक के व्यापक बैंकिंग कारोबार को तथा वाणिज्यिक लेनदेन के काम को कभी आगे नहीं बढ़ाया। जबकि उनके पुरखों का काम पश्चिमोत्तर प्रांतों और चीन तक फैला हुआ था। पारंपरिक स्वरूप के इतर वेबर ने जिस तार्किक पूंजीवाद की बात की है वह केवल जरूरतों के पूरा हो जाने तक सीमित नहीं है। बल्कि इसमें निरंतर मुनाफे की तलाश की जाती है। इसके लिए एक के बाद एक तार्किक और पूंजीवादी उद्यमों का इस्तेमाल किया जाता है। इसे तार्किक इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह मुनाफा कमाने के अवसर तैयार करता है। बंगाल के उद्यमी परिवारों में शायद ही तार्किक पूंजीवादी गुण देखने को मिले हों।

न केवल बंगाल में बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी हिंदू समाज ने तार्किक पूंजीवाद को पीछे धकेल दिया क्योंकि कारोबारी समुदाय यानी वैश्यों को जात व्यवस्था में नीचे रखा गया। लेकिन बंगाल में कम से कम उन लोगों के बीच बौद्धिक तिरस्कार का भाव था जो पैसे कमाने के काम में लग गए थे। यही अवमाननापूर्ण भाव बंगाली समुदाय के मारवाड़ियों के प्रति अमित्रवत व्यवहार के लिए भी उत्तरदायी है। उद्योगपति घनश्याम दास बिड़ला ने कोलकाता से अपना कारोबार ग्वालियर और बंबई स्थानांतरित करते समय इस बात का जिक्र किया था। उन्होंने अपना कारोबार सन 1930-40 के दशक में समेटा। जानकारी के मुताबिक बिड़ला ने बाद में राहत के साथ कहा था कि कोलकाता में उनके पास बस 2,000 लिपिक रह गए। अब वक्त आ गया है कि बंगाल अपना रुख बदलकर कारोबारियों को स्वागत करे। अगर कारोबारी बंगाल छोड़ेंगे तो बंगाल को कई स्तरों पर नुकसान होगा।

Date: 08-06-17

Beware of Beijing

India should utilise Shanghai Cooperation Organisation, but it must sidestep ambushes by China and Pakistan



In Astana, Kazakhstan, this week, Prime Minister Narendra Modi will tick off a box that has long been on India's wishlist — full membership of the Shanghai Cooperation Organisation (SCO). But the context in which Delhi had so eagerly sought membership of the SCO has yielded place to a more uncertain dynamic among the major powers and in the region around us. That Pakistan will be admitted along with India adds to Delhi's potential difficulties with this forum. India's prolonged quest to join the SCO brings into sharp relief an enduring tension between competing geopolitical ideas that have animated India since the end of the Cold War. Put simply, the question is this: Where should Delhi pitch its tent? In the continental or maritime domain? Should it align with the

heartland powers or stitch together a rimland coalition? Must India define itself as a Eurasian or Indo-Pacific power? A review of the two important factors that drove India towards the SCO help clarify the debate. One is Delhi's romance with Central Asia since the collapse of the Soviet Union. If the idea of civilisational contacts — from the Aryans to the Mughals — provided the overarching theme of engagement, the presumed need to compete with other powers — the Great Game meme — provided the justification. But India's experience since 1991 suggests that Delhi can't overcome the tyranny of geography in inner Asia.

With Pakistan blocking India's access to the region, there is little that Delhi can do to decisively influence the geopolitics of inner Asia. Even the powerful British Raj did not have the resources to penetrate deep into inner Asia and beat the continental powers. Calcutta had settled for a defensive game in inner Asia that focused on preventing the continental rivals from encroaching into the Subcontinent. The Partition has, of course, left India in much a less influential position in inner Asia. The other source of India's clamour to join the SCO was the focus on building a multipolar world. Afraid of the so-called unipolar moment after the collapse of the Soviet Union, India joined, willy nilly, the Russian campaign to construct a Eurasian coalition that would limit American power. Delhi believed this would be a useful complement to its intensive engagement with the United States and the West after the Cold War. India believed that Russia and China would provide an insurance against the presumed unreliability of America as a partner. This calculus saw India join the trilateral forum with Russia and China, the BRICS, the SCO and the AIIB. India's trance was only broken with Delhi's recent refusal to participate in the Belt and Road Forum in Beijing last month. What has changed is the recognition that it is rising China's power that poses problems for India more than the United States and the West. Becoming a full member of a Chinese-led forum, the SCO will hardly address that problem.

Consider, for example, India's concerns on terrorism. Combating terrorism, extremism and separatism are among the major objectives of the SCO. While China might talk the talk, it is unlikely to put any pressure, verbal or real, on Pakistan to stop supporting cross-border terrorism and separatism in Kashmir. To make matters worse, China might use the SCO to bring pressure on India to engage and negotiate with Pakistan on Kashmir in the name of "good neighbourliness" that SCO wants to promote regionally. As Russia draws closer to China and Pakistan, Moscow is unlikely to come to India's rescue on Kashmir, as it used to in the past. The

SCO is also focused on promoting connectivity and regional integration in inner Asia. Any hope that this might work to benefit India looks improbable for the moment. In any case, Delhi has concluded that China's belt and road initiatives are about promoting Beijing's economic, political and strategic interests — all of which run headlong into India's territorial sovereignty and claim to regional primacy in South Asia and the Indian Ocean. All this does not mean that Delhi must thumb its nose at the SCO. What India needs is an unsentimental strategy that does three things at the SCO. One is to prevent Pakistan and China ambushing Delhi on the Kashmir question at the current SCO summit in Astana and in the future. India must remind the region that China is a party to India's territorial disputes in Kashmir and is an ally of Pakistan. Second, Delhi must also take advantage of the few diplomatic opportunities the SCO might present in intensifying engagement with Central Asian states. The SCO could also provide a forum to reduce India's current frictions with China and Russia. Third, Delhi must prepare itself to seize potential shifts in SCO politics over the longer term. The political turbulence generated by US President Donald Trump, and the implicit contradictions between Russian and Chinese interests, are likely to surface at some point. Even as they talk "multipolarity", China and Russia are eager to cut separate bilateral deals with Trump. Russian and Chinese interests may also not be in total alignment in Central Asia. For now though, India must bide its time and adopt a low profile at the SCO. As he arrives in Astana, rising out of the vast Kazakh steppe, Modi must ponder over the conceptual tension in India's post-Cold War strategy. If he is realistic about the limits to India's role in a continental coalition led by Russia and China, he would double down on building India's maritime partnerships. If geography constricts India's forays into Eurasia, it beckons Delhi to build on its natural advantages in the Indo-Pacific.

In Eurasia, the strategy must be to limit the damage from the Sino-Russian alliance and probe for potential opportunities for altering the current negative dynamic. As the US becomes an unpredictable actor that is unable or unwilling to balance the heartland powers — China and Russia — Delhi must turn to the rimland — Japan and Western Europe—to secure its strategic interests. India must necessarily play in both the heartland and rimland. What Delhi needs is a clear appreciation of India's very different strengths in the two great geopolitical theatres.

C. Raja Mohan The writer is director, Carnegie India, Delhi, and contributing editor on foreign affairs for 'The Indian Express'



Date: 08-06-17

चंपारण की विरासत के रखवाले

बीसवीं सदी के भारत के इतिहास में 1917 का अप्रैल खास महत्त्व रखता है क्योंकि इसी दौर में गांधी ने बिहार के चंपारण में अंग्रेज निलहे जमींदारों के शोषण-दमन के खिलाफ सत्याग्रह-संग्राम शुरू किया था। अंग्रेजों ने 'तीन कठिया' प्रथा लागू कर चंपारण के किसानों को एक बीघा खेत के तीन कट्टे हिस्से में नील की खेती करने को बाध्य कर दिया था। नील की खेती थकाऊ और जमीन की उर्वरा शक्ति को नष्ट करने वाली थी। इसके लिए किसानों के साथ अंग्रेज निलहे काफी जोर-जबर्दस्ती करते थे। इस अन्यायमूलक प्रथा से किसानों को मुक्ति दिलाने के लिए गांधी ने वहां पर सत्याग्रह आंदोलन चलाया, जो 'तीन कठिया' प्रथा को समाप्त करने में कामयाब हुआ। साल 1917 में रूस में भी क्रांति हुई थी, जिसे विश्व स्तर पर ख्याति और महत्ता प्राप्त हुई। इसकी तुलना में चंपारण सत्याग्रह का दायरा बहुत छोटा था, जिसका संबंध भारत के एक छोटे-से क्षेत्र से था और इसने कोई सत्ता परिवर्तन भी नहीं किया। फिर भी, एक छोटे-से क्षेत्र में होने वाले इस सत्याग्रह-संग्राम के दौरान ऐसी कई अनोखी, अभूतपूर्व घटनाएं घटित हुईं, जो आधुनिक भारत के इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुईं। गौरतलब है कि चंपारण-सत्याग्रह के पहले गांधी दक्षिण अफ्रीका में बीस वर्षों तक वहां की गोरी सरकार की रंगभेद-नीति के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष करके अपने सत्याग्रह-अस्त्र

का सफल प्रयोग कर चुके थे। 'सत्याग्रह' शब्द का आविष्कार भी वहीं पर उन्होंने किया था। सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह का प्रयोग गांधी ने भारत में पहली बार चंपारण में किया और वह भी किसानों के हितार्थ। गांधी ने जिस तरह दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा और सत्य का सहारा लेकर अपना आंदोलन चलाया, उसी तरह चंपारण-सत्याग्रह में भी उन्होंने यह काम किया। यों तो चंपारण के स्थानीय किसान राजकुमार शुक्ल ने 1916 की कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गांधी से चंपारण के किसानों का दुख-दर्द दूर करने की गुहार लगाई थी, लेकिन उन्होंने सुनी-सुनाई बातों को आधार न बना कर खुद चंपारण जाकर वस्तुस्थिति को देखने-समझने का निर्णय लिया। गांधी अप्रैल 1917 में कोलकाता से राजकुमार शुक्ल के साथ पटना होते हुए चंपारण पहुंचे। वहां उन्होंने कई दिनों तक हजारों किसानों से बातचीत की। इस कार्य में उन्हें बिहार के तमाम नामी-गिरामी लोगों का सहयोग भी मिला। जब गांधी को यकीन हो गया कि सचमुच इन किसानों के साथ अंग्रेज निलहे जमींदार अत्याचार कर रहे हैं, तो उन्होंने इसके विरुद्ध अपने सत्याग्रह-संग्राम का शंखनाद किया। इसके पहले भारत तो क्या, विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियों में भी ऐसा नहीं हुआ था कि उनके नेताओं ने गांवों में जाकर पीड़ित किसानों से सत्य जानने के लिए उनसे संवाद किया हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि जहां फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियों में सत्तारूढ़ पक्ष को शत्रु मान कर उनके विरुद्ध रक्तंजित साधनों का प्रयोग किया गया, वहां गांधी ने सत्ता-पक्ष को शत्रु न मान कर उनके साथ अहिंसा और मैत्री के भाव से संघर्ष करने का आंदोलन चलाया। चंपारण-सत्याग्रह में सहयोग करने वाले डॉ राजेद्र प्रसाद ने गांधी के सचिव प्यारे लाल की पुस्तक 'द लास्ट फेज' की भूमिका में लिखा है, 'चंपारण पहुंचने पर गांधीजी ने जो पहला काम किया, वह था उनका यह एलान कि वे अंग्रेज बागान मालिकों को अपना दुश्मन नहीं समझते और उनका भला चाहते हैं।' उनका यह एलान न केवल उत्पीड़कों, बल्कि हमारे जैसे लोगों के लिए भी समझ पाना बहुत मुश्किल था। इसका नतीजा हुआ कि जिनके खिलाफ सत्याग्रह करना था उनका विश्वास और सद्भाव भी उन्हें प्राप्त होता गया, जो इस आंदोलन की सफलता का एक कारण बना। सचमुच, गांधी ने शत्रुभाव से रहित और मैत्रीभाव से युक्त जिस चंपारण-सत्याग्रह को चलाया, वही आगे चल कर उनके पूरे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का आधार बना। यों तो भारत में अहिंसा की दीर्घकालीन परंपरा थी, लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में उसका प्रयोग गांधी ने ही पहली बार भारत की धरती पर चंपारण-सत्याग्रह के दौरान किया। सत्ता पलट की मंशा न रखते हुए भी यह सत्याग्रह रक्तंजित क्रांतियों से अलग रक्तहीन परिवर्तनकारी आंदोलन की मिसाल पेश कर गया। चंपारण-सत्याग्रह का क्षेत्र भले ही एक छोटा-सा क्षेत्र था, लेकिन इसका प्रभाव पूरे देश पर पड़ा जिससे एक भयमुक्त वातावरण का निर्माण हुआ। यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि गांधी पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने चंपारण के जिलाधिकारी की अदालत में सरकारी आदेश की अवज्ञा करने के जुर्म में स्वेच्छा से जेल जाना मंजूर किया। इसके पहले जिन्हें भी राजद्रोह के अपराध में कारावास की सजा हुई थी, उन्होंने अपना बचाव करने की कोशिशें की थीं। यह कोशिश लोकमान्य तिलक ने भी की थी। लेकिन अपना अपराध स्वीकार करते हुए जेल जाने की तत्परता दिखाने वाले प्रथम व्यक्ति गांधी ही थे और उनके इस साहस ने पूरे देश में उत्साह और निर्भीकता का ऐसा बवंडर पैदा किया कि देश की आजादी के लिए खुशी-खुशी जेल जाने वालों का काफिला बढ़ता ही गया। इस संबंध में चंपारण सत्याग्रह से जुड़े हुए आचार्य जेबी कृपलानी ने लिखा है, 'यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि जिस तरह से गांधी ने कानून भंग किया, वक्तव्य दिया और बाद में उनके विरुद्ध मुकदमा वापस ले लिया गया, उससे जनता में कितना उत्साह पैदा हुआ। इस तरह से भारतीय क्षितिज पर एक नर-नाहर का उदय देखने में आया जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की विराट शक्ति की अवहेलना की और जो जेल जाने और वहां की यातनाएं सहने को सहर्ष तैयार था। भारत के लिए यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इससे पूर्व जब कभी कोई राष्ट्रीय नेता या कार्यकर्ता किसी राजनीतिक अपराध के लिए गिरफ्तार हुआ तो अपने बचाव के लिए वह एक वकील कर लेता था। गांधी पहली बार चंपारण में ही 'महात्मा' के संबोधन से नवाजे गए।' इसके पहले भारत के इतिहास में ऐसे किसी व्यक्ति का उदाहरण नहीं मिलता जिसने देश के सुदूर पश्चिमी छोर (पोरबंदर) में पैदा होकर देश के सुदूर पूरबी छोर पर जाकर वहां की जनता पर होने वाले जुल्मों-सितम के खिलाफ संघर्ष किया हो। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि ने भी बहुत देश भ्रमण किए, लेकिन उनका उद्देश्य अपने उपदेशों का प्रचार करना, शास्त्रार्थ करना था। गांधी ने अपनी पत्नी, बेटे और गुजरात-महाराष्ट्र से पचास-साठ स्त्री-पुरुषों को लाकर चंपारण की मुहिम में लगा दिया था। यह भी भारत के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। चंपारण सत्याग्रह की एक दूसरी विशेषता इस बात में भी प्रकट हुई कि यह केवल राजनीतिक-आर्थिक मुद्दों या सत्ताधारियों के विरोध तक सीमित नहीं रहा बल्कि इसके जरिए कई रचनात्मक कार्यों का सिलसिला भी शुरू हुआ। चंपारण के

भित्तिहरवा नामक गांव में गांधी ने आश्रम स्थापित कर वहां पर अशिक्षा का अंधकार मिटाने के लिए पाठशाला खोली। इसमें वहां के लोगों को अक्षर ज्ञान से लेकर सफाई, कुटीर उद्योग, छुआछूत, जातिभेद मिटाने जैसे कार्यक्रमों को शामिल कर देश में संघर्ष और रचनात्मकता के सामंजस्य का नया पाठ पढ़ाया जो उनके राष्ट्रीय आंदोलन का भी एक अभिन्न अंग बना रहा। इस प्रकार देखा जाए तो भारत जैसे विशाल देश के एक छोटे-से कोने में चलाया गया चंपारण-सत्याग्रह पूरे देश में साम्राज्यवादी उत्पीड़न, शोषण के खिलाफ जनता में निर्भीकता और विरोध-संघर्ष की जागृति पैदा करने वाली मशाल सिद्ध हुआ। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि गांधी का देश में पहला राजनीतिक आंदोलन किसानों और गांवों के सवाल को लेकर शुरू हुआ और यह सवाल जीवनपर्यंत उनकी सोच और कार्यक्रम का अंग बना रहा कि कैसे भारत के किसानों और गांवों की बदहाली दूर हो तथा किसानों का ग्राम स्वराज्य कायम हो सके। चंपारण-सत्याग्रह का शताब्दी वर्ष सरकारी स्तर पर मनाया जा रहा है, मगर इसकी विरासत तभी फलवती होगी जब सरकारें किसानों और गांवों के दुखदर्द को समझें तथा खेती और ग्रामोद्योग की रक्षा कर सकें। केवल गांधी और चंपारण-सत्याग्रह की विरुदावली गाने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 08-06-17

अन्नदाता बनाम सरकार

महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के पुणतांबा गांव से अपनी उपज का वाजिब दाम मांगने को लेकर शुरू हुआ किसान आंदोलन मध्य प्रदेश के मंदसौर में आकर हिंसक हो गया। किसान भाजपा सरकारों से उनके चुनाव घोषणा-पत्र के मुताबिक लागत से 50 प्रतिशत अधिक समर्थन मूल्य की मांग कर रहे हैं लेकिन यह मांग सरकारों को रास नहीं आ रही है। कर्जमाफी के वादे जरूर हुए लेकिन कोई ठोस आश्वासन नहीं मिल पाने से ही किसानों की नाराजगी बढ़ी तो मंदसौर में पुलिस धैर्य खो बैठी। पुलिस को धैर्य खोने और निहत्थी भीड़ पर गोली चलाने का कितना अधिकार है या कितना होना चाहिए, यह बहस का मसला हो सकता है। लेकिन ऐसी भी मिसालें हैं कि 1956 में केरल में पहली समाजवादी सरकार के राज में आजादी के बाद पहली दफा पुलिस की गोली से एक आदमी की मौत हुई तो समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने अपनी पार्टी की सरकार के खिलाफ ही आंदोलन छेड़ दिया था। सरकार गिर गई थी। लेकिन वह दौर अलग था जब लोकतंत्र के केंद्र में आम आदमी हुआ करता था। तब किसान भी देश की नीतियों के केंद्र में थे। लेकिन नब्बे के दशक में उदारीकरण के बाद किसान सरकारी नीतियों के केंद्र से हट गए या हटा दिए गए। खाद, बीज और कृषि उपकरणों पर मिलने वाली सब्सिडी पर सबसे अधिक हाय-तौबा मचाई जाने लगी। यह अलग बात है कि किसानों के नाम पर यह सब्सिडी कंपनियों और उद्योग को ही हासिल होती रही है। वही वह दौर था जब देश में आखिरी बार महेंद्र सिंह टिकैत, नजुंदास्वामी, शरद जोशी, किशन पटनायक जैसे नेताओं ने किसान आंदोलनों की धूम मचाई थी। लेकिन उसके बाद किसान आंदोलनों का जैसे दौर ही बीत गया। किसान अपने संकटों के लिए सिर्फ खुदकुशी पर मजबूर हो गए। नब्बे के दशक से अब तक लगभग 4 लाख किसानों की खुदकुशी के मामले राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के रिकॉर्ड में दर्ज हो चुके हैं। विडंबना यह भी है कि मौसम की बेरुखी और सिंचाई के साधनों के अभाव के बावजूद देश में अन्न, दूध, फल-सब्जियों की उपज भी काफी बढ़ी है। सामान्य समझ तो यही कहती है कि उपज बढ़ी तो आमदनी बढ़नी चाहिए, लेकिन किसान की हालत दयनीय होती गई है। राजनैतिक दल वोट पाने की लालच में कर्जमाफी का वादा करती रही हैं। भाजपा ने 2014 के बाद यही किया। अब यही उसके गले की हड्डी बनती जा रही है।



Date: 08-06-17

तार्किक क्षमता के प्रश्नों को ऐसे बनाएं आसान

स्मार्ट टिप्स : आइएएस-2017

सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा के सीसेट पेपर में तार्किक प्रश्नों को हल करने की क्या हो सही स्ट्रेटेजी, बता रहे हैं पूर्व ब्यूरोक्रेट एवं एक्सपर्ट **डॉ. विजय अग्रवाल...**


डॉ. विजय अग्रवाल

सीएसई के प्री के सीसेट के पेपर में पूछे जाने वाले परिच्छेदों में यदि हम तार्किक क्षमता वाले प्रश्नों को जोड़ दें, तो दोनों का जोड़ किसी भी साल पचास से कम नहीं आता। ये पचास, सौ में नहीं, बल्कि अस्सी में हैं। यानी केवल दो चैप्टर से साठ प्रतिशत से भी अधिक प्रश्न और इससे भी बड़ी राहत की बात यह कि ये दोनों इतने सरल होते हैं कि आप इनमें 80 अंक तो सुनिश्चित कर ही सकते हैं। चूंकि इस पेपर को मात्र क्वालिफाई करना होता है, इसलिए इसमें डरने जैसी तो कोई बात हीनी ही नहीं चाहिए।



प्रश्नों को देखकर डरें नहीं

आपके इस डर को आत्मविश्वास में बदलने के लिए मैं इससे पहले परिच्छेद की तकनीक के बारे में आपको बता चुका हूँ। अब बारी है तार्किक क्षमता की। इसके बारे में मैं आपसे दो सबसे जरूरी बातें कहना चाहूंगा। पहला तो यह कि निश्चित तौर पर इसके प्रश्न ऊपरी तौर पर बहुत अधिक जटिल, घुमावदार तथा दिमाग को भ्रमित करने वाले होते हैं। ये ऐसे होंगे ही। लेकिन आप खुद को इन्हें पढ़ते ही घबरा जाने से बचाइए। विश्वास कीजिए कि ये सांप (डरावने) तो जरूर हैं, लेकिन जहरीले बिल्कुल भी नहीं। इनकी शैली (स्वरूप) जरूर कठिन है, लेकिन निराकरण बेहद सरल। मेरी दूसरी बात का संबंध इन प्रश्नों की जटिलता को सरलता में बदलने से है।

यदि आप समझ रहे हैं कि मैं इसका उत्तर अपने दिमाग में सोचकर ढूँढ़ लूंगा, तो मैं आपको सतर्क करना चाहूंगा कि आप सही नहीं सोच रहे हैं। तो फिर आप करेंगे क्या? आपको इसके लिए एक रफ वर्क करना चाहिए, यानी कि आपको पूछे गए प्रश्न को वर्गीकृत

(क्लासीफाइ) करके उसे एक चार्ट में तब्दील कर लेना चाहिए। यह चार्ट आपके लिए एक नक्शे की तरह काम करके आपको उत्तर तक फटाफट पहुंचा देगा और वह भी सौ प्रतिशत सही उत्तर तक।

प्रेक्टिस करके सीखें

आइए, हम यहां ऐसा करके देख लेते हैं। प्रश्न : ए ने अंगूर और अनन्नास खाए। बी ने अंगूर और नारंगियां खाईं। सी ने नारंगियां, अनन्नास और सेब खाए। डी ने अंगूर, सेब और अनन्नास खाए। फल खाने के बाद बी और सी बीमार पड़ गए। उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में बीमारी का कारण किसे कहा जा सकता है? (वर्ष 2016) उत्तर : (ए)सेब, (बी)अनन्नास(सी)

अंगूर(डी)नारंगियां। इस प्रश्न को चार्ट में बदलने के लिए हमें दो काम करने होंगे। पहला ए, बी, सी और डी को अलग-अलग पंक्तियों में लिखना होगा, क्योंकि ये लोग खाने वाले चरित्र हैं, कर्ता हैं। दूसरा यह कि फिर उन नामों के आगे उन-उन फलों के नाम लिखने होंगे, जो-जो उन्होंने खाये हैं। इस प्रकार निम्न चार्ट बनेगा : ए- अंगूर, अनन्नास, बी-अंगूर, नारंगियां, सी-नारंगियां, अनन्नास, सेब, डी-अंगूर, सेब, अनन्नास। कथन है कि बी और सी बीमार पड़ गये, यानी कि इन दोनों ने कोई ऐसा फल खाया है, जो ए और डी ने नहीं खाया है।

अब आप चार्ट को देखकर उस फल की तलाश कीजिये, जिसे बी और सी दोनों ने खाया है, लेकिन ए और डी ने नहीं खाया है। उत्तर के रूप में नारंगियां आपके हाथ में होगा। अन्यथा आप दिमागी स्तर पर सोचते रह जाएंगे। समय बहुत अधिक लगेगा और उत्तर के सही होने की संभावना भी अपेक्षाकृत कम रहेगी। ऐसा आप एक-दो नहीं, बल्कि तार्किक क्षमता वाले सभी तरह के प्रश्नों के साथ करके उन्हें अत्यंत आसान बना सकते हैं।